ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(4): 219-221
www.allresearchjournal.com
Received: 04-02-2021
Accepted: 06-03-2021

डॉ. राजेन्द्रकुमार एस. चौधरी
सहायक अध्यापक (अस्थायी)
तुलनात्मक साहित्य विभाग
हिन्दी केन्द्र, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सुरत, गुजरात, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राजेन्द्रकुमार एस. चौधरी
सहायक अध्यापक (अस्थायी)
तुलनात्मक साहित्य विभाग
हिन्दी केन्द्र, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सुरत, गुजरात, भारत

दक्षिण गुजरात की चौधरी जन-जाति में देव संस्कृति

डॉ. राजेन्द्रकुमार एस. चौधरी

प्रस्तावना

लोक-संस्कृति शब्द दो शब्दों से बना हुआ है 'लोक' और 'संस्कृति', साहित्य के अंतर्गत 'लोक' शब्द का का अर्थ विभिन्न रुपों में देखने को मिलता है। लेकिन यहां पर 'लोक' शब्द का अर्थ साधारण जन समुदाय के अर्थ में लिया गया है। अंग्रेजी की बात की जाए तो अंग्रेजी में फोक (Flock) शब्द का प्रयोग किया जाता है और इसी के पर्यायवाची के रूप में हिन्दी में 'लोक' शब्द का प्रयोग होता है। 'लोक' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदि ने कहा है- " 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य में फैली हुई वह समूची जनता है जिन के व्यवहार का ज्ञान का आधार पोथिया नहीं हैं। ये लोग नगर से परिष्कृत, रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है, परिस्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ वस्यक होती है, उनकों उत्पन्न करते हैं।"[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'लोक' शब्द साधारण जनता के लिए लिया जाता है जो सभ्य समाज से दूर रहनेवाले कबीलों जंगलों, सुदूर गाँवों में निवास करनेवाले लोगों के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है।

संस्कृति की जब बात होती है तो अंग्रेजी के कल्चर (Culture) शब्द से हिन्दी में संस्कृति शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृति के अंतर्गत किसी क्षेत्र विशेष में निवास करनेवाले लोगों के रीति - रिवाज, विश्वास - अंधविश्वास, कलाएँ, पर्व-त्योहार, उत्सव मेले, स्पर्धाएँ, रहन – सहन के तरीके, खान-पान, पोशाक धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक मान्यताएँ, आदि मनुष्य के जीवन संबंधी सारी बातें उसके अंतर्गत समाहित होती है। संसकृति के मोटे तोर पर दो भाग किये गए है- लोकसंस्कृति और शिष्ट संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति का संबंध नगरीय संस्कृति के साथ होता है, जिसके पोषक सभ्य लोग होते हैं। ज्यादात्तर उनके हाथों में ही राजनैतिक, साहित्यक, सामाजिक सत्त की दौर रहती है। "शिष्ट संस्कृति से तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो कि बौद्धिक विकास के उच्चत्तम शिखर पर पहुँचा हुआ जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ प्रदर्शक जिसकी संस्कृति का श्रोता वेद और शास्त्र था।"[2] सभ्य संस्कृति के अंतर्गत साहित्य कला, सामाज के नियमों को घड़ा जाता है, इसका संबंध मूलतः समाज के उच्चवर्ग, मध्यम वर्गों से होता है। लोकसंस्कृति का संबंध मूलतः गाँव देहात के लोगों के साथ होता उनका आधार भी अनपढ़ और असभ्य लोगों से होता है।

"लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी साधारण उत्सभूमि जनता थी और बौद्धिक विकास के निम्नधरातल पर उपस्थित थी।"[3] लोक संस्कृति के अंतर्गत शिष्ट संस्कृति की तरह का पैमाना तय नहीं होता, नहीं किसी भी तरह के नियमों का बंधंन होता है।

गुजरात में आदिवासियों की संख्या तकरीबन 89.19 लाख है, जो गुजरात की कुल आबादी में 14.8 प्रतिशत जितना हिस्सा है। (आदिजाति विकास विभाग गुजरात सरकार की वेबसाईट) दक्षिण गुजरात प्रमुखतः आदिवासियों का क्षेत्र माना जाता है। सूरत, तापी, नर्मदा, डांग आदि जिल्लों में वसावा, वसावे, चौधरी, गामित, वलवी, पांडवी, ढोडिया, कोचवालिया, आदि आदिवासी समूह का निवास है। इन आदिवासी जिल्लों के निवासियों के आस्था के प्रमुख स्थान प्रायः एक जैसे है। त्यौहार, रीत, रस्म, परंपराएँ मिलती-जुलती नज़र आती है।

चौधरी जाति की बात की जाए तो चौधरी जाति मूलतः सूरत, तापी जिले में मुख्यतः निवासी है। उसका मुख्य व्यवसाय खेती है। खेती के साथ-साथ पशुपालन भी वे रखते हैं। चौधरी जाति में भी प्रमुख दो भाग देखने को मिलते हैं एक मोटा चौधरी और दूसरी नानी चौधरी नानी चौधरी और मोची चौधरी में विभिन्नता ज्यात्तर बोली के स्तर पर कई शब्दों में बदलाव बोलने का लहजा थोडा अलग दिखाई देता दूसरी रीत- परंपराओं में थोडा बहुत अंतर हो सकता है बाकी ज्यादा अंतर नहीं है। मोटी चौधरी ज्यात्तर तापी उस पार यानी की मांडवी, झंखवाव की ओर ज्यादा देखने को मिलती है। नानी चौधरी तापी के इस तरफ यानी की व्यारा तहसील में ज्यादा देखने को मिलती है। दोनों समुदाय के देवस्थान भी एक ही है।

आदिवासी वैसे तो प्रकृति का पूजक रहा है। प्रकृति के रूपों को ही वह आस्था के नज़रों से देखता है, इसलिए आदिवासी समाज, व्यक्ति किसी के साथ मिलने पर जय जोहार शब्द का प्रयोग करता था, करता है, जिसका मतलब होता है- सबका कल्याण करनेवाली प्रकृति की जय यानी की वे प्रकृति के पूजक है। वन, पर्वत, नदियाँ एवं सूर्य की आराधना करते है।

दक्षिण गुजरात के देवी-देवताओं या दक्षिण गुजरात के प्रमुख आस्था के केन्द्रों की अगर बात की जाए तो उनमें प्रमुख रूप से – देवमोगरा माता, कंसरी माता, देवलीमाड़ी, बणबा डुंगर, गोवालदेव, गुसमाईमाड़ी, हांईजोडुंगर आदि आस्था के केन्द्र बने हुए है।

देवमोगरा माता

देवमोगरा माता का देवस्थान दक्षिण गुजरात के पूर्व भाग में नर्मदा जिल्ले के सागबारा तहसील के देवमोगरा गाँव में स्थित है। देवमोगरा माता को याहामोगी, पांडोरी माता के नाम से भी जाना जाता है। दक्षिण गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों की कुलदेवी के रूप में मानी जाती है। हजारों लोग यहाँ आकर पूजा करते हैं और मानता रखते हैं और मानता पूरी होने पर जिस तरह से मन में ठाना हो उसी प्रकार के सामान को माता के चरणों में अर्पण करके जाते हैं।

देवमोगरा माता की पूजा, कुमकुम, चुंदडी, श्रीफल, दारू, नयी फसल के अन्न चढ़ाकर, मुर्गों, बकरों आदि की बली चढ़ाकर अथवा जिन्दा छोड़कर मन्नते पूरी की जाती है, पूजा अर्चना की जाती है। माता जी के मंदिर में आनेवाले श्रद्धालु मंदिर के आस-पास के पहाड़ों पर रात में भी रूकते है, पत्थर से चुल्हा बनाकर वहाँ पर खाना बनाकर खाते है और रात में गीत और नृत्य भी करते है। परंपरागत नृत्य-गान करते हुए आदिवासी कलाएँ और संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। जिसमें विशेष वाग्दयंत्र के रूप में डोवड़े (एक विशेष प्रकार का वाद्ययंत्र है जिसे मुह से फूंका जाता है, और उसकी बनावट के लिए सुखी दुधी की छाल, और बांस का प्रयोग होता है साथ ही उसके ऊपर के भाग को मोरपिछ से सजाया जाता है।), बोलती लकडी यह एक विशेष प्रकार की लकड़ी जिसे लोहें पत्तो से सजाया होता है जिसकों जमींन में ठोकने से विशेष प्रकार की ध्वनी निकलती है जो सुर मिलाने का कार्य करती है, दूसरा विशेष आकर्षण का केन्द्र एक बड़ा ढ़ोल होता है जो सामान्य तौर पर एक आदमी से उठाना और चलना बड़ा मुश्किल होता है जिसको गले में लटक्का के बजाया जाता है, उसके अलावा कई छोटे बाजे भी बजाए जाते है जैसे - खंजड़ी, तारपी बांस की लकड़ी का एक यंत्र जो डोवड़े का छोटा संस्करण लगता है। दूसरा नरहील वो भी बांस की लकड़ी का ही होता है वह दिखने में बांसुरी के जैसा लगता है, इन सारे वाद्यों को फूंक मारकर तरह – तरह के रागों का अलापा जाता है।

कंसरी माता

कंसरी माता का देवस्थान तापी जिले के सोनगढ़ तहसील में कावला गाँव के जंगल में स्थित है। माता की मूर्ति का स्थान चारों ओर से प्रकृति से घिरा हुआ है, आस –पास पुरा पहाड़ों से घीरा हुआ अत्यंत प्राकृतिक स्थान है। कंसरी माता के दर्शन के लिए आस-पास के गाँवों के

चौधरी, गामित, वसावा आदि जनजातियों प्रमुख आस्था का केन्द्र है।

कंसरी माता को अन्न की देवी के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ पर आदिवासी लोग फसल खेत में डालने से पहले और पहली फसल निकलने के साथ ही फसल की कंणी यानी की धान हो तो उसका पुआल सहित लाकर यहाँ माता के चरणों में अर्पित करते हैं। इसलिए इस देवी को अन्न की देवी के रूप में माना जाता है। कंसरी नाम जो है वह भी अन्न का ही प्रतीक है क्योंकि चौधरी वगेरे जातियों में फसलवाले भाग को कणी के रूप में जाना जाता है, उसीसे कंसरी नाम दिया गाया है। यहाँ पर लोग जब विविध उत्सवों त्योहार के अवसर पर इक्कठे होते हैं तो नारियल, अगरबत्ती, मूर्गे की या बकरें की बली देकर पूजा करते हैं उसके साथ ही दर्शन के लिए आनेवाले देवस्थान के बहार डोवडा, ढ़ोल बजाकर नाचते है झुमते है।

देवलीमाड़ी

देवलीमाड़ी तापी जिले के सोनगढ़ तहसील के देवलपाड़ा गाँव में पहाड़ी पर बसा हुआ देव स्थान है। देवलीमाड़ी गामित और चौधरी समाज की कुलदेवी के रूप में माना जाता है। वौसे तो यहाँ भी दूसरी आदिवासी समाज के लोग आते हैं, मन्नते मांगते है पूरी होने पर यहाँ पर अपनी रखी हुई शरतों के साथ यहाँ पहूँचते हैं। पूजा करते हैं। यहाँ पर भी नारियल, अगरबत्ती के साथ मूर्गे और बकरें की बली चढ़ाने का विधान है। यहाँ पर हर साल मेले का आयोजन किया जाता है। साथ ही नृत्य डोवडे और ढ़ोल के ताल पर होता है। पहाड़ नीचे खाना बनाकर लोग खाते है रात्रि नावास करते हैं लोग पूरी रात नृत्य और गान करते हैं।

बणबाडुंगर

बणबा डुंगर का आज गुजरात सरकार की योजनाओं के कारण प्रवासन क्षेत्र के रूप में विकास किया गया है। दूसरें जो देवस्थान है उनमें ज्यादात्तर देविओं या माता का देवस्थान यानी की महिला देवियों का स्थान है, हालाँकि यहाँ पर पुरूष के रूप में पूजा होती है। यह स्थान सूरत जिले के वांकल गाँव के पास स्थित है, यहाँ पर ज्यात्तर बली वगेरे देने की रीत रसम दिखाइ नही देती लेकिन नारियल और अगरबत्ती से पूजा करने की रीत यहाँ पर भी देखने को मिलती यहां पर भी डोवडे और ढ़ोल बजाकर नाचने की परंपरा कई वर्षों चलती आ रही देखने को मिलती है।

इन देवस्थानों के अलावा भी दक्षिण गुजरात के आदिवासियों के अनेक स्थल है, जैसे – देवमोगरा माता, कंसरी माता, देवलीमाड़ी, बणबा डुंगर, गोवालदेव, गुसमाईमाड़ी, हांईजोडुंगर, कालो काकर, मायादेवी आदि आस्था के केन्द्र बने हुए है। जहाँ वे प्रकृति के साथ सानिध्य में उसकी पूजा करते हैं। ये उनकी संस्कृति का अभिन्नअंग है। उन देवताओं के साथ उनके लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ जैसे अनेक लोकसाहित्य का संबंध है। लोक साहित्य और लोक संस्कृति गहरा नाता हमें देखने को मिलता है।

अंत मे कह सकते है कि आदिवासियों के इन देवस्थानों में आधुनिकता के दौर में बहुत कुछ बदलाव आया है, उनके पूजने की विधी में भी परिवर्तन आया है और आज सरकारने भी कई देवस्थानों को प्रवासन केन्द्र के रूप में विकास करने का कार्य किया है उसीके चलते लोगों की आवाजाही ऐसे क्षेत्रों में बढ़ने से इन देवस्थानों पर प्रदुषण और गंदकी भी बढ़ती हुई नज़र आती है, क्योंकि कई शहरी लोगों के लिए वह मात्र पीकनीक प्लेस के कम नहीं होता इसलिए बड़े शहर के लोग हप्ते भर की दौड-धाम और भीड़-भाड़ से त्रस्त होकर आराम और शांति के लिए आज ऐसे स्थानों को अपवित्र कर रहे हैं। उसका ताजा उदाहरण ये देवस्थान है। हो सकता है कि अगले कुछ सालों में ये देवस्थान आस्था के केन्द्र न रहकर सिर्फ और सिर्फ मन बहलाने के स्थान मात्र रह जाएँगे, मोज- मस्ती के केन्द्र रह जाएँगे इसलिए आदिवासी समाज के अग्रणी लोगों को या समाज के सत्तात्मक लोगों को इसकी ओर ध्यान देने की आज आवश्यक्ता है, नहीं तो हो सकता हमारी आनेवाली पीढ़ी को देने के लिए परंपरा के नाम पर रीत-रस्म के नाम पर देवस्थानों के नाम पर हमारे पास कुछ नहीं बचेगा इसकी तरफ ध्यान देने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार वितर्क- पृ.सं-205
2. डॉ. इन्दु यादव – लोकसाहित्य, पृ. सं.-7
3. डॉ. इन्दु यादव – लोकसाहित्य, पृ. सं.-7